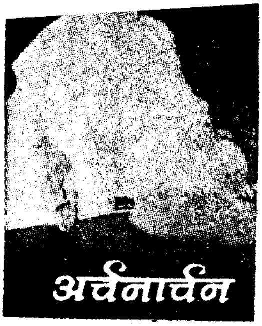

हठयोग

[एक व्यष्टि-समष्टि विश्लेषण]

☐ डॉ० श्यामसुन्दर निगम

'ह्' से आशय इड़ा नाड़ी तथा 'ठ' से पिंगला नाड़ी से होता है। ये दोनों नाड़ियाँ हमारे नासा-रंध्रों से जुड़ी हैं। इनके माध्यम से श्वासक्रिया होती है। आध्यात्मिक-जागरण अथवा तांत्रिक-साधना के जिज्ञासु साधक अथवा योगारूढ़ जन इनके माध्यम से प्राणायाम साधने हेतु पूरक, कुंभक एवं रेचक नामक श्वास-क्रियाएँ करते हैं। इन यौगिक क्रियाओं के माध्यम से कुंडलिनी के रूप में मानव-शरीर के अधोभाग में स्थित जीवात्मा का जागरण संभव होता है, परिणामस्वरूप कुंडलिनी ऊर्ध्वमुखी होकर, इड़ा और पिंगला के मध्य में, मेरुदण्ड कोष में विद्यमान सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते सहस्रार की ओर परम तत्त्व से मिलने प्रस्थान कर देती है, ताकि जीव एवं ब्रह्म के योग द्वारा उनमें एकात्म्य हो सके। योग की इस पद्धति को **'हठयोग'** अथवा **'कुण्डलिनी योग'** के नाम से अभिहित किया गया है। वैदिक वाङ्मय में यह योग सूत्र रूप में उल्लिखित है किन्तु कालान्तर में पुराणों, शैव एवं शाक्त आगमों, सिद्ध एवं नाथ तंत्र-ग्रन्थों एवं दसियों स्वतंत्र ग्रन्थों में इसकी विशद चर्चा एवं सूक्ष्म अनुशीलन हुआ। भारतीय चिन्तन पर इसका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि महायान मत की कुछ शाखाएँ, जैनमत के तांत्रिक विधान, अद्वैत—वेदान्त के गुह्य-साधक, सूफी सम्प्रदाय के कुछ प्रचारक तथा संत एवं रहस्यशील कवि भी अनेक प्रकार तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इससे प्रभावित हुए। आधुनिक काल में भी भारत में एवं अन्यत्र इस पर गंभीरतम अध्ययन, अनुसंधान एवं विश्लेषण हुआ। परिणामस्वरूप अनेक मौलिक ग्रन्थ लिखे गये जिनके कारण भारत की यौगिक एवं तांत्रिक पद्धतियों की मारे विश्व के दार्शनिक जगत में धूम मच गई।

कुण्डलिनी योग को भली प्रकार आत्मसात् करने के लिए तद्विषयक सूक्ष्म शरीर-विज्ञान को जानना समीचीन होगा।

मानव-शरीर नाड़ियों का एक अद्भुत अन्तर्जाल है। ये नाड़ियाँ ७२,००० मानी गयी हैं। इनके दो प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार की नाड़ियों का सम्बन्ध मन और प्राण की क्रियाओं से होता है। इनमें सुषुम्ना का विशेष महत्त्व है। यह मेरुदण्ड के मध्य में स्थित रहती है और आज्ञा-चक्र से निकलकर ग्रीवा, वक्षस्थल, कटिप्रदेश होती हुई जननेन्द्रिय तक पहुँचती है। शरीर का समस्त स्नायविक जाल इसी सुषुम्ना से सम्बधित होता है। इस प्रकार सुषुम्ना, मस्तिष्क एवं शरीर के विभिन्न अवयवों के मध्य सूचनाओं के आदान-प्रदान का एक अत्यंत जटिल एवं त्वरिततम सूक्ष्म माध्यम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे प्रकार की नाड़ियाँ भृकुटि के पास स्थित मनश्चक्र से निकलती हैं और श्रोत्र, नेत्र, मुख तथा जिह्वा तक फैल जाती हैं। इनमें एक कूर्म नामक नाड़ी भी है जो शरीर के अधोभाग में गुदा तक जाती है। इन नाड़ियों की क्रियाएँ मन के आधीन नहीं होतीं।

इन समस्त नाड़ियों में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना का अत्यधिक महत्त्व है। [चित्र क्र. १ (अ) एवं (ब) में इन नाड़ियों एवं विभिन्न चक्रों की स्थिति प्रदर्शित की गयी है।] इस कारण इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना पर कुछ और प्रकाश डालना आवश्यक है। सुषुम्ना के दक्षिण पार्श्व में इड़ा नाड़ी होती है। इसका सम्बन्ध चन्द्र से है। वामपार्श्व में पिंगला होती है जिसका सम्बन्ध सूर्य से होता है। इस कारण इड़ा और पिंगला को क्रम से चन्द्र-नाड़ी एवं सूर्यनाड़ी भी कहा जाता है। जैसा कि प्रारम्भ में देखा गया है, इन नाड़ियों द्वारा कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड में मस्तिष्क से लेकर जननेन्द्रिय तक फैली हुई है। इसकी तीन परतें होती हैं। ऊपर की परत वज्र (वज्रिनी), मध्य की चित्रा

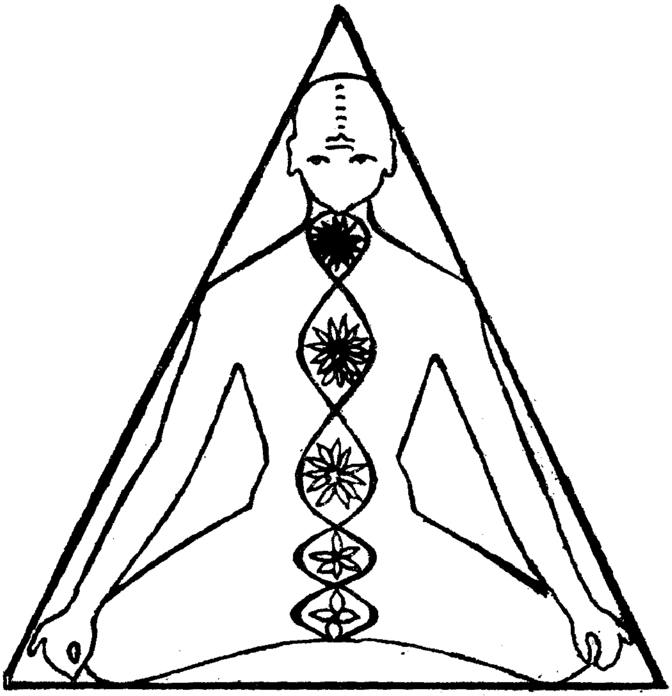

इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों के मध्य की स्थिति
सामने की ओर से : चित्र १-(अ)

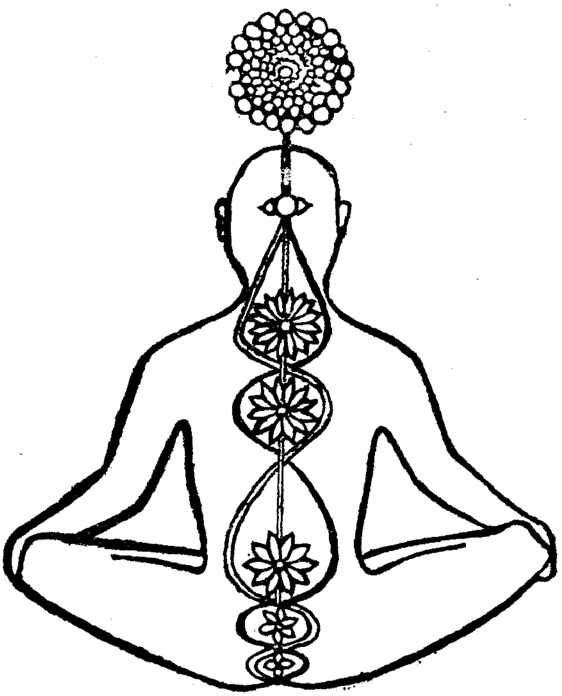

इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों के मध्य की स्थिति
पीछे की ओर से : चित्र-१ (ब)

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(चित्रिनी), सबसे भीतर की ब्रह्मनाड़ी कही गई है। ब्रह्मनाड़ी अत्यंत बारीक तन्तु की भाँति होती है जो विभिन्न चक्रों को पुष्पनालिका की भाँति जोड़ती है। सुषुम्ना में जो ६ चक्र होते हैं वे चित्रा नामक परत में होते हैं। इन चक्र-स्थानों पर नाड़ियों के पुष्पाकार गुच्छ होते हैं। ये स्थान स्रावयुक्त संवेदनशील ग्रन्थियों के रूप में होते हैं तथा शक्ति व चेतना के महत्त्वपूर्ण केन्द्र माने गये हैं। इनके जागरण एवं साक्षात्कार के लिये केवल योगाभ्यास ही नहीं अपितु ध्यान एवं एकाग्रता भी आवश्यक है। इस प्रकार से चक्र कुण्डलिनी की सूक्ष्म अंतर्यात्रा के अत्यंत मार्मिक पड़ाव हैं जो केवल साधकों को ही प्रत्यक्ष हो सकते हैं। आधुनिक शरीर-विज्ञानी इन चक्र-स्थानों का महत्त्व तो जानते हैं किन्तु इन चक्रों को भौतिक रूप में प्रत्यक्ष कर पाने में असफल रहे हैं।

कुण्डलिनी का स्वरूप—कुंडलिनी-शक्ति को जीवात्मा के रूप माना गया है। इसका रूप सर्पिणी की भाँति होता है। वह साढ़े तीन आंटों वाली बताई गई है। गुदा के पीछे एक मांसपेशी होती है जो सामान्यत: ९ अंगुल लम्बी तथा ४ अंगुल मोटी होती है। इसे कन्द कहते हैं। कन्द के मध्य में विषु चक्र नामक एक नाभिवत् केन्द्र होता है। इस केन्द्र पर शक्ति निष्क्रिय रहती है। सर्पाकार कुंडलिनी इसी स्थान पर अधोमुखी होकर विश्राम करती है। विषु चक्र को धारण करने वाली एक मांसपेशी और होती है, इसे अध:सहस्रार कहते हैं। चूंकि कुंडलिनी की यात्रा के पूर्व साधकों के समस्त प्राण समष्टि रूप धारण कर सर्वप्रथम यहाँ एकत्रित होते हैं, इस कारण इस केन्द्र का महत्त्व अन्य चक्रों की अपेक्षा कम नहीं है।

तन्द्रिलावस्था से जब कुंडलिनी जाग्रत होती है तो सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ऊर्ध्वमुख यात्रा प्रारम्भ कर सहस्रार चक्र में विराजमान अपने अनन्त काल से बिछुड़े प्रियतम से मिलने चल पड़ती है। यह मार्ग अविद्याग्रस्तता एवं माया के आवरणों के कारण अवरुद्ध हुआ रहता है किन्तु इड़ा एवं पिंगला द्वारा जब प्राणायाम क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं तो प्राण एवं अपान के मिल जाने से यह मार्ग खुल जाता है। प्राण वायु द्वारा सुषुम्ना-मार्ग जैसे ही स्वच्छ किया जाता है, कुण्डलिनी की यात्रा की प्रारंभिक तैयारी पूर्ण हो जाती है। वस्तुत: ये चन्द्र और सूर्य नाड़ियाँ, प्राण और अपान वायु के माध्यम से जगत् के धनात्मक (ह) और ऋणात्मक (ठ) तत्त्वों को समन्वित कर जैसे ही गतिशील करती हैं, अनन्त काल से कुण्डली बांधे सोयी अधोमुखी अध:स्थित जीवात्मा प्राणायामयुक्त साधना द्वारा प्रधमित अग्नि से आकुलित हो अपना अलसायापन त्याग कर सुषुम्ना के इस खुले, स्वच्छ एवं शीतल मार्ग पर ऊपर की ओर बढ़ने लगती है। इस ऊर्ध्वमुखी यात्रा के निमित्त वह ब्रह्मनाड़ी का सूत्र ग्रहण करती है तथा चित्रिनी (चित्रा) स्थित चक्रों को पार करती हुई सहस्रार की ओर बढ़ जाती है। इन चक्रों के नाम क्रमश: मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा हैं। ये चक्र विभिन्न लोकों से सम्बन्धित होते हैं। इन तांत्रिक सूक्ष्म चक्रों के विभिन्न बीज, तत्त्व, देवता, शक्ति, वर्ण आदि होते हैं। इन चक्रों का स्वरूप पुष्पवत् होता है। विभिन्न चक्रों की विभिन्न पंखुड़ियाँ होती हैं। जब कुंडलिनी इन चक्रों का बेध करती है तो साधक को विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। यदि साधक इन सिद्धियों का लौकिक लाभ लेने लगता है तो उसका पतन ध्रुव है। किन्तु यदि अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों के प्रति तीव्र अभीप्सा, निष्ठा एवं दृढ़ता को वह बनाये रखता है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलिनी अपनी ऊर्ध्वमुखी यात्रा अविश्रान्त एवं अबाध पूर्ण करती जाती है। इस यात्रा में सबसे बड़ी साधना, धैर्य एवं एक-लक्ष्यता उसे भृकुटिस्थ आज्ञाचक्र को पार करने पर करनी होती है। आज्ञाचक्र से सहस्रार तक का मार्ग इसीलिये बंक-नाल कहलाता है।

कुंडलिनी की इस यात्रा को एक अन्य प्रकार से भी जानना उत्तम होगा। जैसे-जैसे यह दिव्य-शक्ति चक्रों को बेधती जाती है, वह ऊर्जावान होकर विभिन्न कलाओं से युक्त होती जाती है। यह एक दिव्य मिलन ही होता है। महामाया कुंडलिनी अपनी १०० कलाओं, जैसा कि तांत्रिक ग्रन्थों में उल्लेख है, से शृंगारित होकर विद्युत की भांति चकाचौंध पैदा करती, सहस्रार से सुषुम्ना में झरते अमृत का पान कर पुष्ट होती, अनाहर नाद से

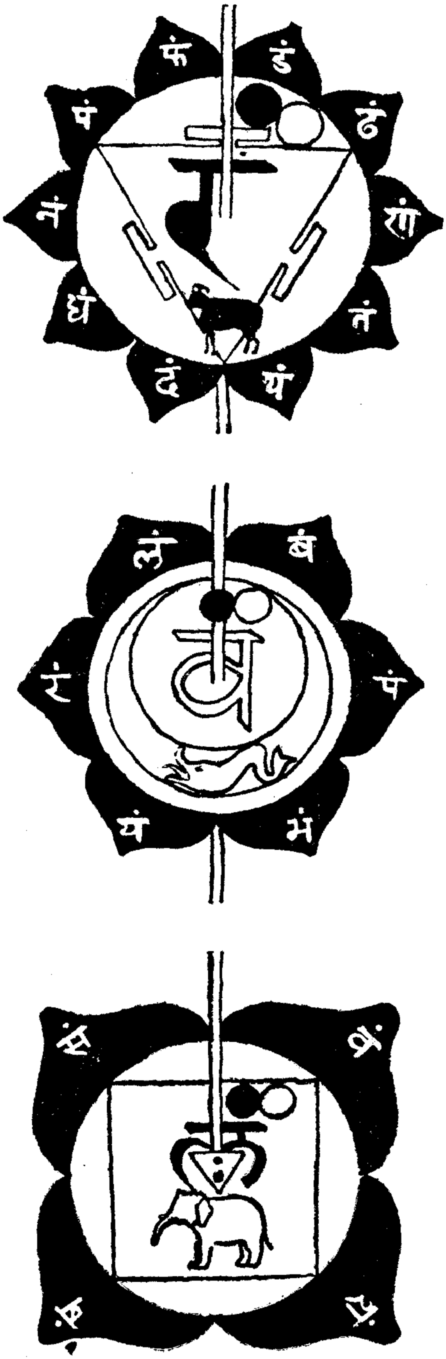

मणिपूरक चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र (अ)

मूलाधार चक्र (ब)

चित्र २-(अ)

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

अभिनन्दित होती, शरीर के अणु-अणु को अपनी दिव्य-चेतना के स्फुरण से रूपान्तरित करती ब्रह्मनाड़ी की पालकी में बैठ चित्रिनी का झिलमिलाता घूंघट डाल, वज्रिनी के उत्तरीय को धारण कर सुषुम्ना के रास्ते चक्रों के बन्दनवारों के मध्य होती हुई अपने संरक्षक देवी देवताओं की छत्रछाया में बीज-मंत्रों की स्तुतियों के बीच, अपनी अक्षराओं के लोक-गीतों से उल्लसित हो बंक-नाल स्थित भ्रमर-गुहा के गुह्य मार्ग से अनन्तकाल से बिछुड़े अपने दिव्य प्रियतम से चिर-मिलन हेतु सहस्रार की ओर बढ़ जाती है।

चक्रों का विशद परिचय निम्न सारिणी द्वारा स्पष्ट हो सकता है—

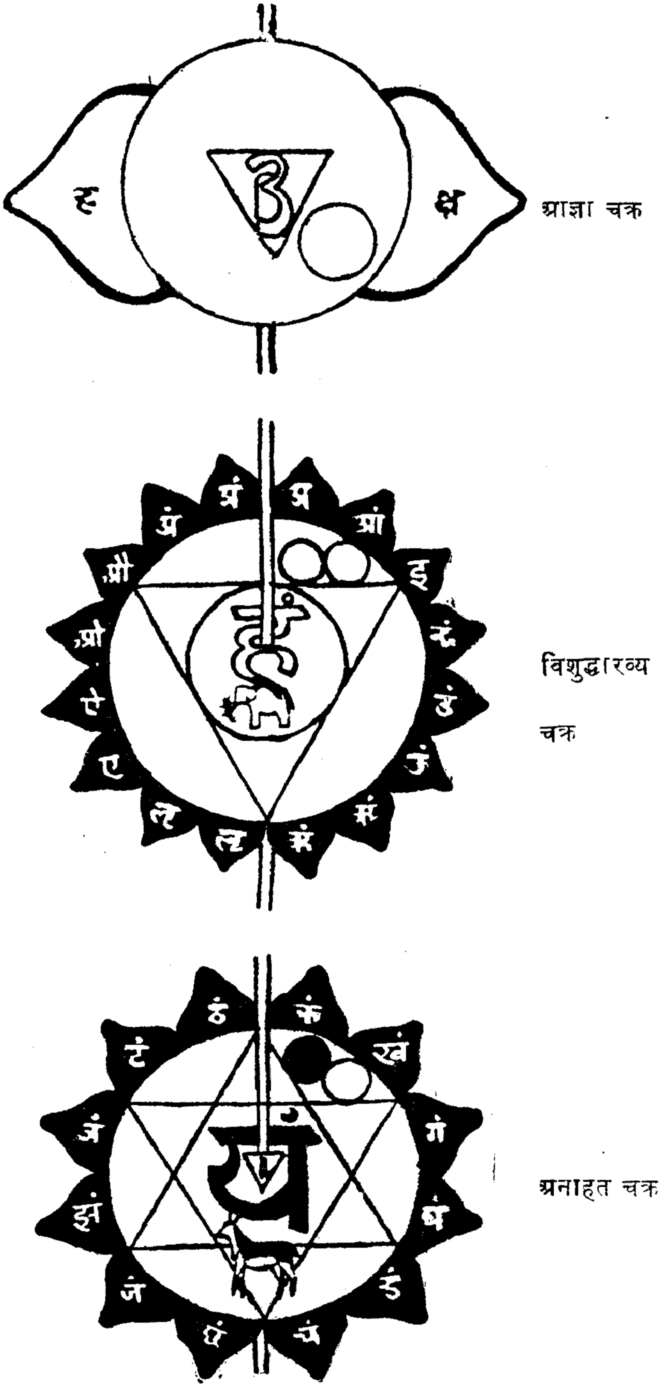

चित्र २-(ब)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

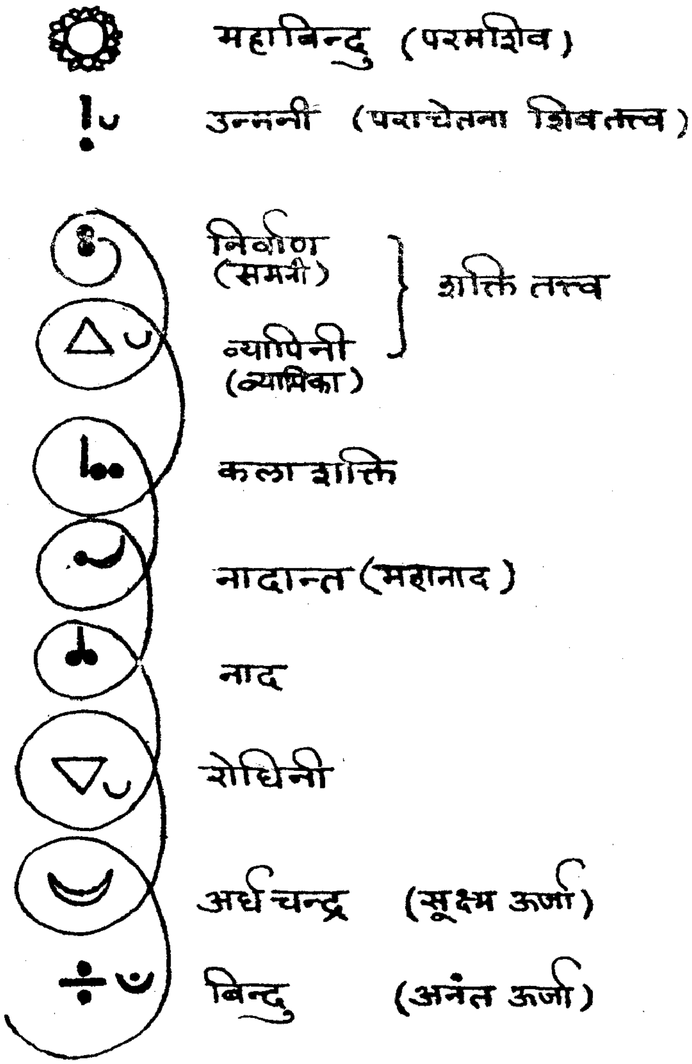

(चेतना के ऊर्ध्व-स्तर)

चित्र-३
निम्न लोकों से ऊर्ध्वलोकों की ओर

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

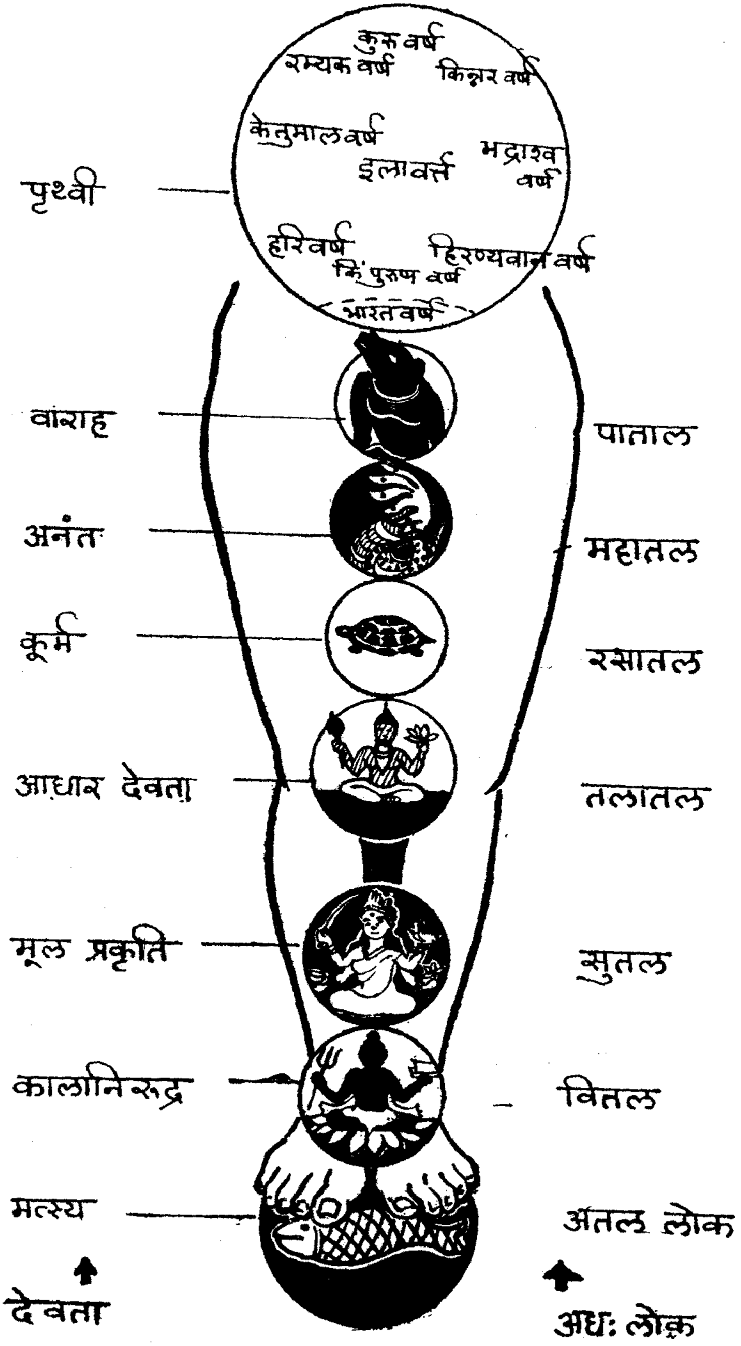

चित्र-४
लोक-लोकान्तरी पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रों का विवरण

क्र.	चक्र	स्थान	चक्र-पुष्प की पंखुडियाँ(दल)	लोक	तत्त्व	देवता	शक्ति	बीज मंत्र	अक्षर
१.	**मूलाधार**	लिंग	४	भूः	पृथ्वी	ब्रह्मा	डाकिनी	लं	व से स
२.	**स्वाधिष्ठान**	पेड़ू	६	भुवः	जल	विष्णु	चाकिनी	वं	ब से ल
३.	**मणिपूर**	नाभि	१०	स्वः	अग्नि	रुद्र	लाकिनी	रं	ड से फ
४.	**अनाहत**	हृदय	१२	महः	वायु	ईश्वर	काकिनी	यं	क से ठ
५.	**विशुद्ध**	कण्ठ	१६	जनः	आकाश	महेश्वर (सदाशिव)	शाकिनी	हं	अ से अः
६.	**आज्ञा**	भ्रूमध्य	२	तपः	महत्	परशिव	हाकिनी	.	ह, क्ष
७.	**सहस्रार**	मस्तिष्क	१,०००	सत्यम्	शून्य	परब्रह्म	महाशक्ति	(:)	विसर्ग

[चक्रों के चित्रों का अवलोकन कीजिये] चित्र क्र. २ (अ) एवं (ब)

व्यष्टि-समष्टि विश्लेषण

उपर्युक्त सारिणी के अवलोकन से यह स्पष्ट होगा कि इन चक्रों का सम्बन्ध विभिन्न लोकों से है। मूलाधार चक्र भूर्लोक, स्वाधिष्ठान भुवर्लोक, मणिपूर स्वर्लोक, अनाहत महर्लोक, विशुद्ध जनःलोक, आज्ञा तपःलोक तथा सहस्रार सत्यलोक से सम्बन्धित हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये चक्र व्यष्टि में समष्टि-स्थित विभिन्न लोकों का प्रतिनिधित्व तो नहीं करते हैं?

प्रश्न का उत्तर निश्चित ही सकारात्मक है। भारतीय दार्शनिक विचारधारा व्यष्टि में समष्टि को, तथा समष्टि में व्यष्टि को देखती रही है। इस कारण इन चक्रों के माध्यम से कुंडलिनी की यह अन्तर्यात्रा अनुभूति के व्यापक स्तर पर विभिन्न लोकों की, सूक्ष्म चेतना के अदृष्ट आधार पर यात्रा होती है। केवल इन लोकों तक ही क्यों? पुराणों ने सात अधःलोकों यथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल की परिकल्पना की है। उनके ऊपर भूर्लोक अथवा पृथिवी-मंडल है जो सूक्ष्मरूप में मूलाधार में स्थित है। हठयोग सम्बन्धी कुछ चित्र एवं तत्सम्बन्धी विवरण इन दिनों उपलब्ध हैं। इनमें अधोलोक में इन विभिन्न स्तरों तथा उनकी शरीर में स्थिति तथा उनके दिव्य-प्रतीकों का अंकन हुआ है। चित्र क्र.-३ में इन्हें प्रदर्शित किया गया है। इन्हें विश्लेषित करने पर मत्स्य, कूर्म, अनन्त, वराह आदि अवतारों की कल्पना का गूढ़ तत्त्व भी समझ में आ जावेगा। यह भी स्पष्ट हो जावेगा कि कुंडलिनी और कोई नहीं, पुराण-वर्णित शेषनाग है, जिस पर वराहरूपी वे विष्णु विराजमान हैं जिन्होंने पृथ्वी अर्थात् लक्ष्मी को धारण कर रखा है। यहाँ जो मूलाधार है उसकी नाभि में ब्रह्मा, जो उसका देवता है, ब्रह्मनाड़ी की कमल-नाल पर बैठा है। पुराणों ने कुंडलिनी की इस व्यष्टि-गत अंतर्यात्रा से जुड़े तत्त्वों को समष्टिगत रूपक से आश्चर्यजनक रूप से बांधा है।

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैव तंत्र से सम्बन्धित ग्रन्थों ने आज्ञा-चक्र से ऊपर के अनेक सूक्ष्म चेतना-स्तरों की बात कही है। इन स्तरों, जैसा कि चित्र क्र.-४ में प्रदर्शित किया गया है, के नाम नीचे से उपर की ओर क्रमशः बिन्दु, अर्धेन्दु, निरोधिका, नाद, नादान्त (महानाद), कलाशक्ति, व्यापिनी (व्यापिका), निर्वाण (या समनी), उन्मनी तथा महाबिन्दु (परमशिव) है। शैव-तंत्र के अनुसार कुंडलिनी की लय-स्थली सहस्रार न होकर महाबिन्दु है। प्रथम तीन स्तर पार करने पर रूपात्मक सत्ता का निरोध हो जाता है। नाद में वाचक या शब्दात्मक सत्ता रहती है किन्तु महानाद में यह वाच्य-वाचक भेद समाप्त हो जाता है। शक्ति के स्तर पर अनन्त आनन्द का अनुभव होता है। व्यापिनी का स्तर दिव्यत्व की विशिष्ट प्रक्रियाओं द्वारा जैसे ही बेधित किया जाता है, निर्वाण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार निरोधिका पर निर्वितर्क, नादान्त पर निर्विचार, व्यापिका पर सानन्द एवं समनी पर सस्मिता समाधि होती है। उसके बाद उन्मनी अवस्था आती है जहाँ परा-चेतना अनुभूत होती है। अन्तिम अवस्था में परमशिव में लय होना अपरिहार्य है।

उपसंहार—हठयोग का उद्देश्य होता है—धैर्य, शक्ति, ऊर्जा एवं लोच से युक्त उच्च स्वास्थ्य की उपलब्धि; मानसिक उदात्तीकरण एवं स्थिरकरण; तथा कुण्डलिनी-जागरण। जब साधना अपनी परिपक्वानस्था में पहुँचती है तो अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा ईशित्व बशित्व. एवं प्राप्ति नामक अष्टसिद्धियों की सहज प्राप्ति हो जाती है किन्तु सच्चा साधक इनमें न रमकर उस परमतत्त्व से अभेद हो जाता है। इस प्रकार हठयोग का चरम उद्देश्यक परिपूर्ण हो जाता है।

व्यष्टि-जागरण के आधार पर समष्टि-चेतना के सूक्ष्म रूपान्तर की जो योजना हठयोग ने प्रस्तुत की है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है।

समर्पण; ३४ केशव नगर
हरि फाटक, उज्जैन (म. प्र.)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org